IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 23, Issue 6, Ver. 9 (June. 2018) PP 75-78
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

भारतीय संस्कारों का महत्त्व

डॉ. वीरेन्द्र कुमार जोशी
व्याख्याता संस्कृत
गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय
अलवर (राजस्थान) 301001

संस्कार भारतीय संस्कृति के मुख्य अंग हैं । प्राचीन समय से ही संस्कार धार्मिक तथा सामाजिक एकता के प्रभावकारी माध्यम रहे हैं । इनका उदय सुदूर अतीत में हुआ था और कालक्रम से अनेक परिवर्तनों के साथ में आज भी जीवित हैं । भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। ये मनुष्य के व्यक्तिगत व सामाजिक विकास को सम्पन्न करने तथा उसके दैहिक और भौतिक जीवन को सुव्यवस्थित बनाने हेतु आवश्यक हैं। व्यक्ति के असंस्कृत स्वरूप को सुसंस्कृत एवं अनुशासित करने के निमित्त संस्कारों की योजना की गई। अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य के जीवन पर अपना कुप्रभाव डालने वाले अदृश्य विघ्नों से निरापद होने के लिए भी इनका निर्धारण हुआ। संस्कारों की प्रधान विशेषताएं शुद्धता , आस्तिकता , धार्मिकता और पवित्रता मानी गई । इनका मूल आधार , धर्म , यज्ञ और कर्मकाण्ड रहा । मनुष्य का आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जीवन संस्कारों की निष्पन्नता से प्रभावित होता रहा है। इस प्रकार संस्कार का आधार धर्म है, जिसके माध्यम से मनुष्य अपने जीवन को उन्नत परिष्कृत और सुसंस्कृत बनाता है। प्राचीन भारत के आर्यों में संस्कारों का क्रियान्वयन आवश्यक माना गया है।'संस्कार' धर्मशास्त्र का पारिभाषिक शब्द है। संस्कार वह क्रिया है जिसके करने से कोई व्यक्ति किसी कार्य के लिए योग्य हो जाता है– "योग्यता चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते ।" किसी पदार्थ विशेष में योग्यता धारण कराने वाली क्रियाएं 'संस्कार' ही है अथवा जिसके द्वारा कोई पदार्थ किसी कार्य विशेष के योग्य हो जाते है वह क्रिया संस्कार है– संस्कारो नाम सः यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य संस्कार वे सामाजिक और धार्मिक क्रिया–विधियां होती हैं। जिनसे मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक मानसिक, चारित्रिक और सांस्कृतिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है । मनुष्य में दूसरे गुणों का आधान (धारण) करा देना ही 'संस्कार' कहलाता है – गुणन्तराधानं संस्कारः । व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण विकास के लिए संस्कारों का विशेष महत्त्व है। गौतम सूत्र में 48 संस्कारों का उल्लेख किया गया हैं किन्तु सामान्यतः सोलह संस्कारों का पालन करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य माना गया है ।

मनु के अनुसार सोलह संस्कार शरीर को शुद्ध करके , उसे आत्मा का उपयुक्त स्थान बनाते हैं । मनुष्य जीवन गर्भाधान से प्रारम्भ होता है और शमशान में अन्त होता है । मनुस्मृति में संस्कार युक्त मानव को शास्त्रों के अध्ययन का अधिकारी माना गया है –

निषेकादि श्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदिति विधिः ।

तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ।।

मनुष्य शरीर को स्वस्थ तथा दीर्घायु और मन को शुद्ध तथा संस्कारवान बनाने के लिए गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक सोलह संस्कारों की व्यवस्था है। ये संस्कार स्त्री और पुरुष दोनों के लिए हैं।

संस्कार– 'संस्कार' पद की व्युत्पत्तिपरक निरुक्ति में सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु में घञ् प्रत्यय लगाकर सुट् का आगम करके सिद्ध किया गया है जिसका अर्थ परिष्करण, परिमार्जन आदि है। इस संस्कार पद से शिक्षा , संस्कृति , प्रशिक्षण , शुद्धि , परिष्करण , आभूषण अर्थ भी ग्रहीत होते हैं । वीरमित्रोदय संस्कृत–प्रकाश में संस्कार की प्राच्यकालीन मान्यता के सम्बन्ध में उल्लेख है –

आत्म शरीरान्तरनिष्ठो विहित–क्रियाजन्योऽतिशयविशेषः संस्कारः

अर्थात् शारीरिक एवं आध्यात्मिक प्रकृति के आधायक सविधि अनुष्ठानों का नाम संस्कार है ।

मीमांसक 'संस्कार' शब्द का आगम यज्ञांगभूत पुरोडाशादि की विधिवत् शुद्धि से मानते हैंकृ

प्रोक्षणाबिजन्य संस्कारो यज्ञांग पुरोडाशेस्वित द्रव्यचर्म ।

नैयायिक भावों को व्यक्त करने की आत्मव्यंजक शक्ति को संस्कार कहते हैं । विभिन्न विचारों के होते हुए भी यह सदा से माना जाता रहा है कि सविधि संस्कारों के अनुष्ठान से संस्कृत व्यक्ति में विचक्षण एवं अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है । वस्तुतः संस्कार की सर्वाधिक स्पष्ट और प्रामाणिक परिभाषा है कि जिस प्रक्रिया के माध्यम से दोषों को दूर तथा गुणों का आधान किया जाना ही संस्कार है – संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वा स्याद् दोषापनयेन वा। शास्त्रीय दृष्टि

से संस्कार ग्रह्य – सूत्रों की विषय सीमा के अन्दर आते हैं । गृह्यसूत्र साधारणतः विवाह से प्रारम्भ कर समावर्तन–संस्कार पर्यन्त दैहिक संस्कारों का निरूपण करते हैं । अधिकांश में अन्त्येष्टि संस्कार का उल्लेख नहीं मिलता है। संख्या की दृष्टि से विचार करने पर आश्वलायन गृह्यसूत्र में 12 , पारस्कर, बोधायन एवं बाराह गृह्यसूत्र में 13 तथा वैखानस गृह्यसूत्र में 18 संस्कारों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार गौतम धर्मसूत्रों में 40 संस्कारों का निर्देश मिलता है। मनुस्मृति में तेरह संस्कारों को माना है। याज्ञवल्क्यस्मृति में केशान्त को छोड़कर, मनुस्मृति के शेष बारह संस्कारों का विधान है। परन्तु परवर्ती स्मृतियों में सोलह संस्कारों का उल्लेख मिलता है । प्रसिद्ध सोलह संस्कारों में कुछ प्राग्जन्म संस्कार हैं – गर्भाधान , पुंसवन , सीमन्तोन्नयन , कुछ बाल्यावस्था के संस्कार जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्न प्राशन, चूड़ाकरण , कर्णवेध हैं , शिक्षा से सम्बन्धित विद्यारम्भ , उपनयन , वेदारम्भ , केशान्त और समावर्तन हैं , इनके अतिरिक्त एक विवाह और अंत्येष्टि संस्कार भी हैं । इन षोडश संस्कारों का विशेष प्रचलन रहा है –

(1) गर्भाधान संस्कार –

गर्भाधान हर व्यक्ति का प्रथम संस्कार है । जिस कर्म द्वारा पुरूष स्त्री में अपना बीज स्थापित करता है , उसे गर्भाधान कहते हैं । शिशु का माता के गर्भ में बीज रूप में प्रतिष्ठत होना गर्भाधान है –

गर्भस्याधानं वीर्यस्थापनं यस्मिन्येन कर्मणा तद् गर्भाधानम् ।

यह संस्कार मनुष्य के पृथ्वी पर आगमन का सूचक है । इसका उद्देश्य पितृ ऋण से मुक्ति , सृष्टि का विकास तथा वंश वृद्धि है ।

2. पुंसवन संस्कारः–

स्त्री के गर्भवती होने के द्वितीय या तृतीय मास में किया जाने वाला संस्कार पुंसवन है । इसी को पारस्कर गृह्य सूत्र में कहा गया है –

अथ पुंसवनं पुरा स्यन्दत इति मासं द्वितीये तृतीये वा ।

इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य गर्भ में स्थिति शिशु की रक्षा तथा उसको पुत्र रूप प्रदान करना होता है । महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि जब गर्भस्थ शिशु हलचल युक्त हो उससे पूर्व पुंसवन संस्कार करना चाहिए– पुंसः सवनं स्यन्दनात्पुरा। यह संस्कार शिशु को पुंस अर्थात् पुत्र (पुरुष) रूप देने के लिए ही होता है । इस अवसर पर दम्पति ईश्वर से श्रेष्ठ गुणों से युक्त पुत्र की याचना करते हैं । गर्भिणी स्त्री को वटवृक्ष की से जटा सुंघाई जाती है तथा उसके आचार, विचार और व्यवहार पर विशेष ध्यान दिया जाता है। में भोजनादि का शिशु के शरीर पर अच्छा या बुरा व्यवहार पड़ता है । चरक संहिता में इस विषय में अनेक उपायों का निर्देश किया गया है। गर्भिणी स्त्री को धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन एवं मनोनुकूल दृश्यों को देखने का निर्देशन किया गया है ।

(3) सीमान्तोन्नयन–

गर्भ में स्थित शिशु तथा गर्भवती स्त्री को समस्त अमंगलकारी शक्तियों से बचाने के लिए यह संस्कार किया जाता है। महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार गर्भ से छठे अथवा आठवें मास में सीमन्तोन्नयन संस्कार किया जाता है– "षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तो मासि"।

यह संस्कार शुक्लपक्ष में स्थित श्रेष्ठ चन्द्रमा की गति देखकर किया जाता है। इस समय पति अपनी पत्नी का श्रृंगार करते हुए उसके वालों को कंघी से संवार कर उसकी माँग (सीमन्त) भरता है। इसका उद्देश्य गर्भिणी स्त्री को मानसिक और आत्मिक संतुष्टि प्रदान करना है। जिससे वह स्वयं प्रसन्न रहें और गर्भस्थ शिशु भी प्रसन्नचित्त उत्पन्न होवे ।

4. जातकर्मः–

पुत्रजन्म के उपरान्त यह संस्कार किया जाता है । इस अवसर पर शिशु को पिता की गोद में दिया जाता था जो उसकी जीभ पर सोने की सलाई से दधि ,घृत और मधु के मिश्रण द्वारा ओम् लिखता था । शिशु को शहद और घी चटाया जाता था ।

5. नामकरण –

इस संस्कार का महत्त्व प्राचीन काल से आज तक यथावत है । नाम से ही मनुष्य को कीर्ति एवं सम्मान मिलता है । महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार जन्म से 11 वें दिन नामकरण किया जाता था । ये नाम प्रायः देवताओं , नक्षत्रों , प्रकृति के पदार्थों आदि के नामों पर होते थे ।लड़कियों के नाम सुख पूर्वक उच्चारण के योग , स्पष्ट अर्थ वाले , मनोहर , मंगल सूचक तथा अन्त में दीर्घ अक्षर वाले होते थे।

6. निष्कमणः–

यह संस्कार जन्म के पश्चात् बारहवें दिन से चतुर्थ मास तक होता था। यम ने तृतीय और चतुर्थ मास में विकल्प का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है–

ततस्तृतीये कर्त्तव्यं मासे सूर्यस्य दर्शनम ।

चतुर्थमासि कर्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम् ।।

इस संस्कार का सम्बन्ध बालक के घर से प्रथम बार बाहर निकलने से है ।

7. अन्नप्राशनः–

इस संस्कार द्वारा बालक को सर्वप्रथम अन्न खिलाया जाता था । गृह्यसूत्रों के अनुसार यह संस्कार शिशु के जन्म के पश्चात् छठे मास में किया जाता था। मनु व याज्ञवल्क्य ने भी अन्नप्राशन का उचित समय छठा मास ही माना है।

8. चूडाकर्म :–

इस संस्कार में बालक के सिर के बाल पहली बार मुंडवाए जाते थे और सिर पर केवल चूड़ा छोड़ दी जाती थी । इसे आजकल जडूला उतारना , मूंडन या केशोच्छेदन संस्कार भी कहते है । इस संस्कार का प्रयोजन धर्मशास्त्रों के अनुसार संस्कार्य व्यक्ति के लिये दीर्घ आयु , सौन्दर्य तथा कल्याण की प्राप्ति था ।

9. कर्णवेध –

यह संस्कार जन्म के सातवें वर्ष में होता था। कभी–कभी इसे तीसरे या पाँचवें वर्ष में भी किया जाता था। इस अवसर पर सुई की नोंक से कान को छेदकर उसे सोने या चाँदी की बाली पहनाई जाती थी

10. विद्यारम्भ दृ

बालक के शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो जाने पर उसको शिक्षा का आरम्भ विद्यारम्भ संस्कार है । इसमें उसे अक्षर सिखाए जाते थे ।

11. उपनयन संस्कारः–

इस संस्कार में शिक्षा के लिए बालक को गुरु के समीप ले जाया जाता था । इसे यज्ञोपवीत भी कहा जाता है ।

12 –वेदारम्भ

वैदिक स्वाध्याय के समय यह संस्कार होता था ।

13 – केशान्त

इस संस्कार में ब्रह्मचारी की दाढ़ी – मूछों का सर्वप्रथम क्षौर किया जाता था ।

14 – समावर्तन संस्कार

जिस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम का प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता था उसी प्रकार उसकी समाप्ति भी एक संस्कार विशेष से होती थी उसे 'समावर्तन' कहा जाता है । समावर्तन का शाब्दिक अर्थ है पुनः लौटना । गुरुकुल में रहकर सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर जिस समय ब्रह्मचारी अपने पितृकुल लौटता था उस समय यह संस्कार किया जाता था , उसे दीक्षान्त समारोह भी कहा जाता है । इस संस्कार के पश्चात् ही ब्रह्मचारी को 'स्नातक' की उपाधि दी जाती थी। इस अवसर पर ब्रह्मचारी अपने कॉपीन दण्ड आदि को त्यागकर , दूसरे वस्त्रधारण करता था। इस अवसर पर विद्यार्थी गुरु को भी दक्षिणा देकर प्रसन्न करते थे।

15 – विवाह

भारतीय संस्कृति में विवाह संस्कार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। धर्मग्रन्थों में विवाह को 'यज्ञ' कहा गया है । समावर्तन संस्कार के बाद ब्रह्मचारी विवाह कर

गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होता था । विवाह करना धर्म की दृष्टि से पुण्य कार्य माना गया है अतएव विवाह पारिवारिक और सामाजिक दायित्व था , वैयक्तिक नहीं ।

16 – अन्त्येष्टि संस्कार

यह व्यक्ति के जीवन में अन्तिम संस्कार है । इसे यज्ञ भी कहा गया है । इस संस्कार का उद्देश्य मृतक के शरीर की समुचित व्यवस्था करना था ।

ये संस्कार मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने गए हैं । संस्कार आध्यात्मिक , शारीरिक और मानसिक शुद्धि के साथ – साथ मानव के आगे के जन्म की भूमिका प्रस्तुत करते हैं । मानव के चरम लक्ष्यों अर्थात् चार पुरुषार्थों का सफल सम्पादन समुचित रूप से किये गए संस्कारों पर ही निर्भर है । संस्कार व्यक्ति को सामाजिक और धार्मिक प्राणी बनाने के साथ–साथ उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास भी करते हैं ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 – भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व – डॉ. श्रीकृष्ण ओझा

2 – प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति – राजकिशोर सिंह एवं उषा यादव

3– संस्कृत – वाङ्मय का बृहद् इतिहास

प्रधान सम्पादक – पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय , सम्पादक प्रो. व्रज बिहारी चौबे

4 – संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी

5 – संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – पद्मश्री डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

6 – वैदिक संस्कृति और संस्कृत साहित्य का इतिहास – रामानुज तिवारी